सहजानंद शास्त्रमाला

सहजानंद ज्ञानामृत

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

सहजानन्द-ज्ञानामृत

...०...

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

...०...

प्रकाशक—
मन्त्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उ० प्र०)
द्वितीय संस्करण १०००] सन् १९८९ [लागत ७५ पैसे मात्र

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मंगल-तंत्र

ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि ।
मैं ज्ञानमात्र हूँ,मेरे स्वरूपमें अन्यका प्रवेश नहीं,अतः निर्भार हूँ ।
मैं ज्ञानघन हूँ, मेरे स्वरूपमें अपूर्णता नहीं, अतः कृतार्थ हूँ ।
मैं सहज आनंदमय हूँ,मेरे स्व रूपमें कष्ट नहीं,अतः स्वयं तृप्त हूँ ।
ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि ।

…o…

आत्म—रमण

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हूँ, मैं सहजानन्दस्वरूपी हूँ ॥टेक॥
हूँ ज्ञानमात्र परभावशून्य, हूँ सहज ज्ञानघन स्वयं पूर्ण ।
हूँ सत्य सहज आनंदधाम, मैं सहजा०, मैं दर्शन० ॥१॥
हूँ खुदका ही कर्ता भोक्ता, परमें मेरा कुछ काम नहीं ।
परका न प्रवेश न कार्य यहाँ, मैं सहजा०, मैं दर्शन० ॥२॥
आऊं उतरूं रम लूं निजमें, निजकी निजमें दुविधा ही क्या ।
निज अनुभव रससे सहज तृप्त, मैं सहजा०,मैं दर्शन० ॥३॥

…o…

http://www.jainkosh.org

ॐ

सहजानन्द-ज्ञानामृत

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

(१)

मैं ज्ञानमात्र हूँ, मात्र ज्ञानका ही परिणमन मुझमें संभव है, ज्ञानका ज्ञानरूपसे हो परिणमन हो, यही मेरी रक्षा है, जिसकी निशानी है निर्विकल्प अलौकिक परम संतोषका अनुभव ।

(२)

मुझमें छोटेसे छोटा यही संभव है कि अज्ञानरूप (विकल्प रूप) से परिणम लूं, यों ज्ञानका अज्ञानरूपसे परिणम जाना ही मेरा विघात है, जिसकी निशानी है इन्द्रियविषय या नामवरी में चित्तका रमना ।

Version 1

(३)

अनादि अनन्त अहेतुक सहज चैतन्यस्वभावके आश्रयमें ही सम्यक्त्वका आविर्भाव है, पर या परभावके आश्रयसे तो अनर्थक विकल्पका ही प्रादुर्भाव है, अतः आत्मस्वभावके आश्रयमें ही आत्माका कल्याण है।

(४)

कृपालु अभूतार्थनय भूतार्थनयके निकट पहुँचाकर अपनी बलि दे देता, कृपालु भूतार्थनय अखण्डस्वानुभवके निकट पहुँचाकर अपनी बलि दे देता, कृपालु स्वानुभव आनन्दधाम में परमविश्राम देकर कृतार्थ कर देता।

(५)

एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कर्ता कभी हो ही नहीं सकता अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यके पर्यायरूप परिणमता नहीं, इस सम्यक् बोधमें अहंकार और कायरता दोनोंका परिहार है।

(६)

एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका भोक्ता कभी हो ही नहीं सकता अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यके पर्यायको कभी भी अनुभवता नहीं, इस सम्यक् बोधमें मिथ्या संतोष न रहकर सत्य संतोष होता है।

(७)

प्रत्येक द्रव्य अपने आपकी परिणतिसे अपने आपमें अपने

आपका कर्ता है अर्थात् स्वयं ही स्वयंमें स्वयंकी परिणतिसे स्वयंके पर्यायरूप परिणमता है, इस सम्यक् बोधमें अनधिकृत्य अधिकारकी दुर्वासना समाप्त हो जाती है।

(८)

प्रत्येक द्रव्य अपने आपके भवनसे अपने आपमें अपने आपका भोक्ता है अर्थात् स्वयं ही स्वयंमें स्वयंकी संभूतिसे स्वयंके पर्यायको अनुभवता है, इस सम्यक् बोधमें अनधिकृत्य रमणकी विडम्बना मिटकर सत्य संतृप्ति होती है।

(९)

प्रत्येक द्रव्य अपने आपका ही स्वामी है, स्वयं ही स्वयंके स्वभावरूप है किसी भी एक वस्तुका अन्य समस्त परवस्तुओं में अत्यन्त अभाव है, स्वतन्त्रताके सम्यक् बोधमें ममता मिटकर क्षमता प्रकट होती है।

(१०)

अपना ज्ञान किसी भी अनात्म पदार्थमें इष्ट अनिष्ट बुद्धि करके बाह्यमें उपयुक्त हो तब कष्ट होना प्राकृतिक ही बात है, क्योंकि आत्मकुलकी बान छोड़कर यह सब अकृत्य ही तो किया जा रहा है।

(११)

अपना ज्ञान बाह्य पदार्थको भिन्न, असार, विनश्वर, अशरण जानकर, ज्ञानस्वभावको स्वयं, सार, ध्रुव व शरण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ज्ञान बाह्य पदार्थसे हटकर ज्ञानको ज्ञानरूपसे परिणमानेमें उद्यत हो, तब शान्ति होना स्वाभाविकहै।

(१२)

नरभव, बुद्धि, सुविधा, सत्सङ्ग, बोध, आरोग्य आदि समागम पाकर निरपेक्ष सहज ज्ञानानन्दस्वरूप अपनेको प्रतीत कर लेनेमें चतुराई है, अन्यथा तो वही विडम्बना रहेगी, जो अब तक अनादिसे चली आई है।

(१३)

मेरेमें मेरे निमित्तसे विकार होता नहीं, मात्र कर्मविपाक का प्रतिफलन चेत्य होता अनिवारित, चेत्यचेतक सम्बन्धपर मेरा क्या वश, मेरी क्या करतूत ? मैं तो नोकर्मका आश्रय न कर कर्मविपाकका सम्पर्क तजकर सहज प्रसन्न रहूँगा।

(१४)

मेरा प्रयोजन, लक्ष्य, उद्देश्य एक ही है—ज्ञानका ज्ञान रूपसे ही परिणमन होओ, अब कहीं भी विसम्वाद नहीं, मुझको तो सर्व घटनाओंमें यही यही प्रयोजन दिखाता है, बस मेरा कर्त्तव्य तो ज्ञानका ज्ञानरूपसे परिणमना ही है, अन्य कुछ नहीं।

(१५)

दृष्टिमें तो आ ही गया कि मुझे इस अन्तःस्वरूपमें ही रहना है, रह नहीं पाता, यह कर्मलीलाका विलास है, होओ, घबड़ानेकी बात नहीं, दृष्टि और कर्मलीला—इन दो के संग्राम में आखिर दृष्टिकी ही विजय होगी।

http://www.jainkosh.org

(१६)

नोकर्ममें उपयोग जुड़नेके माध्यमसे ही कर्मफल व्यक्त होता है, अतः नोकर्मके सम्पर्कसे अलग रहना भी एक पुरुषार्थ है, नोकर्ममें उपयोग न जुड़े तो कर्म प्रतिफलित मात्र होकर निकल जायगा।

(१७)

किसी भी जीवको देखो, किसीसे भी बोलो, किसीसे भी व्यवहार करो, उसमें सहजपरमात्मस्वरूपका ध्यान पहिले कर लिया करो, पश्चात् जो व्यवहार करोगे वह स्वपर संतोषकारी व निरापद होगा।

(१८)

मैं ज्ञानपुञ्ज हूँ, मुझ ज्ञानको ज्ञानरूपसे ही परिणमना चाहिये, ज्ञानपरिणमनमें ही मेरा सर्वस्व कल्याण है, यही अनन्त भगवंतोंने किया, ज्ञानमें ज्ञानस्वरूपको ही ज्ञेय बनाकर ज्ञानरूप परिणमना ही मेरा कर्तव्य है।

(१९)

पावन चैतन्यस्वरूपमें स्वच्छ उछाल ले लेकर अलौकिक आनन्दरसमें छके जानेका काम यथासमय होते ही रहना चाहिये, अन्यथा इस दुर्लभ मानव-जीवनका पाना बेकार है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(२०)

जो कुछ मेरा है वह मेरे आत्मप्रदेशोंमें शाश्वत है, बाहर मेरा कुछ नहीं, परद्रव्य तो प्रकट भिन्न है, विकारभाव परभाव है, मेरा ज्ञानतत्त्व ही सार है, बाह्य तत्त्व सब बेकार है।

(२१)

विषयकषायके कारण दुःखी होते हो और विषयकषायकी ही वृत्ति करते हो, विषय राग व कषायभाव करनेकी उद्दण्डता का फल अति भयानक है। प्रियतम! इस उद्दण्डताको छोड़कर अपने सहज आनन्दधाममें विश्राम करो।

(२२)

किसीको भी शरण मानकर किसी भी व्यामोहमें कहीं भी भटक आओ, आखिर शरण तुम्हारे तुम ही रहोगे। निज सहज ज्ञानानन्दस्वरूपकी सुध लो और सर्वकष्टोंसे दूर हो लो

(२३)

किसी भी दूसरे जीवसे या किसी भी अचेतन पदार्थसे तेरा रंच सम्बंध नहीं, किसीसे कुछ भी आशा करना मूढ़ता है, इसका फल क्लेश ही है, अतः आशा पिशाचिनीसे छुटकारा लो और सत्य सुखी हो जावो।

(२४)

अस्खलित चिदात्मक निज अन्तस्तत्त्वमें अपने आपको स्थापित करनेसे अभ्युदित होने वाला अविनाशी सौम्य ज्ञानप्रकाश! सदा जयवंत होओ, ॐ नमः सर्वविशुद्धाय, परमशरणाय, समयसाराय।

(२५)

मैं ज्ञानमात्र हूँ, किसी पर ज्ञेयके जाननपर मुझ ज्ञानतत्त्व का अस्तित्व नहीं, ज्ञान अपने स्वभावसे ज्ञेयज्ञानलहरोंको उछलता रहता है, परमार्थतः यही ज्ञान है, यही ज्ञेय है, यही ज्ञाता है, जयवंत होओ मेरे स्वातंत्र्य।

(२६)

अनन्तशक्त्यात्मक होनेपर भी स्वयंको नयदृष्टिसे लखने लग जाता हूँ, तो बुद्धिसे खण्डित होकर परमस्थितिसे भ्रष्ट हो जाता हूँ, अतः यही ध्यान जयवंत होओ—मैं अखण्ड सहज शान्त अचल चैतन्य तेज हूँ।

(२७)

साध्य समयसारकी साधनाकी धुनमें अन्य धुन छूट जाती है तब एकदेश व सर्वदेश त्यागरूप श्रावकलिङ्ग व श्रमणलिङ्ग अनिवारित है, तथापि अन्तस्तत्त्वके दर्शन, ज्ञान, आचरण रूप ज्ञानसंचेतनसे साध्यकी सिद्धि होती है।

(२८)

जितने क्षण सहजात्मध्यानमें गुजरें उतने क्षण सार्थक हैं, जितने क्षण विषयकषायमें गुजरें उतने क्षण व्यर्थ हैं, अनर्थ हैं। प्रियतम! अपने सहज शौर्यको सम्हालो, व्यर्थका कष्ट मत भोगो।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

(२९)

एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कर्ता न कभी हुआ, न है, न कभी हो सकेगा, विकार निमित्तसान्निध्य बिना न कभी हुआ, न है, न कभी हो सकेगा। इन दोनों तथ्योंके परिचयसे परमात्मतत्त्वकी कृपा जगती है।

(३०)

कोई भी जीव हमारा विरोधी नहीं है, हम सबका स्वरूप एक समान है, अपनी शान्तिके अर्थ ही ऐसा करता जिसकी चेष्टा हमें प्रतिकूल जंचती वह उस प्रतिकूल चेष्टावान कर्माक्रांत परमात्मस्वरूपका भी कल्याण हो।

(३१)

किसी भी जीवके प्रति विरोधभाव रखनेसे मेरी ही बरबादी है, क्योंकि विरोधभाव पाप है उससे स्वयंको संक्लेश होता है, अतः किसीके प्रति विरोधभाव न जगे और सभी जीवोंमें परमात्मस्वरूप दिखे।

(३२)

कितना भी दुःख आवे, समझो यह दुःख तो अनंतदुखियों के सामने थोड़ासा ही है तथा यह समागत दुःख भी मात्र मानने माननेका दुःख है, मेरा स्वरूप तो ज्ञानमात्र अमूर्त है, इसमें तो दुःखका काम ही नहीं।

http://www.jainkosh.org

(३३)

जितना भी दुःख होता है वह अपने अज्ञान और रागके अपराधसे ही होता है। यदि: दुःखसे दूर रहना चाहते हो तो ज्ञान और वैराग्यको पुष्ट करो, ज्ञान और वैराग्य ही दुःखसे छुटकारा पानेका उपाय है।

(३४)

मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानपरिणमनको ही करता हूँ, ज्ञानपरिणमनको ही भोगता हूँ, मुझमें किसी भी परका प्रवेश नहीं, फिर बाधा कहाँसे आये ? निज सहजानन्दको भूलकर बाहर कष्ट बनाये जानेका प्रोग्राम केन्सिल।

(३५)

आध्यात्मिक व शारीरिक ब्रह्मचर्यका पालनहार ही पुरुष पवित्र है। परमें कर्तृत्व, भोक्तृत्व व स्वामित्वका व्यर्थ विकल्प करके मूढ़ मत बनो तथा देहवीर्य नष्ट करके अपनी विडम्बना मत बनाओ।

(३६)

प्रत्येक जीवमें सहजपरमात्मतत्त्वको देख यथोचित विनयशील रहो। केवल जीव तो शुद्धस्वभावी है, उसमें विकार अपराधका काम नहीं, मात्र ज्ञाता न रहकर विकल्प बनाया जाना तो कर्मविपाकका नाच है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(३७)

हालाहल विषपानसे तो इसी भवमें एक बार मृत्यु होती है, विषयविषभोगसे अनेक भवोंमें मृत्यु होती रहती है, अतः बार-बार मृत्युका काम तजकर ज्ञानामृत पीकर अमर हो जावो ।

(३८)

कोई पुरुष कैसी ही लौकिक उन्नति कर रहा हो, उसकी आकांक्षा मत करो, वह सब तो मायाजाल है, विपरीत परिश्रम है, अनर्थकारी है, निज ज्ञानान्दधाममें बसकर तृप्त होओ व सहज आनन्द भोगो ।

(३९)

धन इज्जत वैभवको अकारण जोड़े चले जानेकी क्यों मूर्खता कर रहे हो ? परिग्रह जोड़-जोड़कर आखिर करोगे क्या, छोड़ना तो पड़ेगा ही, अभीसे ही परतत्त्वकी ममता तजकर अनाकुल शान्त हो लो ।

(४०)

आत्मन् ! प्राप्त यह देह घृणित, भयानक, विनश्वर व संतापकारी है, देहदृष्टि रंच भी हितकर नहीं, प्रत्युत सकल क्लेशोंका स्रोत है, देहराग तज विदेह ज्ञानस्वरूपकी रुचिमें ही कल्याण होगा ।

(४१)

स्वार्थी तो बनो, किन्तु सत्य स्वार्थको पहिचान अवश्य कर लो, सत्य स्वार्थ अपने सहज ज्ञानस्वभावमें ज्ञानको माकर सहजानन्द पाना है । क्षणिक, भिन्न व तृष्णाके हेतुभूत विषयप्रसंग स्वार्थ नहीं, अनर्थ है ।

(४२)

निज अन्तःप्रकाशमान सहजपरमात्मतत्वके दर्शन बिना क्लेश ही पाया, अब ज्ञानघन परमब्रह्मके प्रसादसे सुबुद्धि पाई तो इसका सदुपयोग कर लो, यदि वह अवसर खो दिया तो न जाने पेड़, कीड़े क्या हो-होकर दुर्दशा भोगोगे ।

(४३)

खुद ज्ञानघन और खुदका ही ज्ञान न रहा, इससे गजब और क्या हो सकता है ? ज्ञानस्वरूप होकर भी खुदका ज्ञान न करना अपने आपपर गजब सितम ढाना है । अज्ञान महा अपराध है, आत्मज्ञान करो, अन्य सबकी उपेक्षा कर दो ।

(४४)

प्रियतम चैतन्य महाप्रभो ! तुमसे बिछुड़कर मैं उपयोग बहुत बरबाद हुआ, आनन्दघन चैतन्यप्रभु तो मुझमें ही था, मेरी ही भूलसे गुप्त रहा, प्रियतम चैतन्य महाप्रभो ! दर्शन दिये, अब कभी ओझल न होना ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

[४५]

परमार्थको निरखनेमें अधिक समय गुजरो, जहाँ देखो वहाँ परमार्थ, जीवमें निरखो परमात्मस्वरूप, पुद्गलमें निरखो केवल परमाणु, परमार्थके निरखनेपर अपरमार्थके व्यामोहका संकट मिट जावेगा।

[४६]

दुनियामें क्या हो रहा—यह देखनेके लिये तू ज्ञानामृत-धाम से बाहर मत निकल, बाहर तो मायाजालका महा-जाल ही सर्वत्र छाया हुआ है, बाहर मत देख, निजको देख, बुरा है तो बुरा, भला है तो भला, देख स्वको ही।

(४७)

विकल्पोंका विलय हो, ममताका समागम हो, यही सर्वोपरि वैभव है। स्वयंकी सुध न हो, बाहर ही उपयोग दौड़े, यही सर्वोपरि विपदा है। अन्यकी दृष्टि हटे, अनन्य चित्स्वरूप की दृष्टि रहे, यही सर्वोपरि शरण है।

(४८)

मैं तो ज्ञानानन्दस्वरूप ही हूँ, मुझमें कष्टका कोई काम नहीं, परपदार्थमें व्यर्थ कुछ सोचनेकी कुटेव करने से दुःख होता है, मैं स्वयंमें, स्वयंकी वृत्तिसे रहूँ, यही मात्र मेरी ईमानदारी है।

http://www.jainkosh.org

(४९)

मृत्युसे डरनेसे मृत्यु न मिटेगी, सुखके चाहनेसे सुख न मिल जायगा, अमर आनन्दमय निजस्वरूपकी रुचिसे मृत्यु भी मिटेगी, आनन्द भी मिलेगा। अन्तर्नाथ! तू ही सनातन स्वतः परिपूर्ण होनेसे अपने लिये सर्वस्व है।

(५०)

प्रगति चाहते हो तो मिथ्या वचन मत बोलो, अप्रिय, अहित भी मत बोलो, अपनी विफलता, कमी, त्रुटि ढांकने का प्रयत्न मत करो, अपनी उपलब्ध साधारण सफलताओं का डंका मत बजाओ।

(५१)

विकारमें परिणाम मेरे मत जाओ, यही मेरी वास्तविक कमाई है, अन्य वस्तुओंका लाभ नहीं, बल्कि उलझन और बरबादीका फन्दा है, नोकर्म के प्रसंगसे हटकर ज्ञानमें ज्ञान रमाकर कर्मविपाकको फेल कर देना सच्ची शूरता है।

(५२)

जहाँ जाना है उससे उल्टा कदम बढ़ाकर क्या वहाँ पहुँचेंगे जहाँ शान्ति पाना है? उससे उल्टी दिशामें दृष्टि हो तो क्या शान्ति मिलेगी? शान्ति पाना है आत्मामें, सो अनात्मा से हटो और आत्मामें आवो, शांति मिलेगी।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(५३)

आत्मामें क्लेशका कुछ काम नहीं, यह तो कल्पना करके क्लेशका हौवा बना लेता है। यदि यह क्लेश नहीं चाहते हो तो जैसे निराले ज्ञानमात्र हो वैसे स्वयंको जानने लगो, स्वरूपमें बात सब उत्तम है, उसे भूलकर व्यर्थ कुरूपमत बनो, बस क्लेश खत्म।

(५४)

स्वयंके स्वयंसिद्ध सहजस्वरूपकी सुधमें हो स्वयंका हित है, सहजसिद्ध स्वयंकी दृष्टि रखते हुए क्षण व्यतीत करनेमें ही बुद्धिमानी है। बाहर सब कुछ अपने लिये न कुछ है, कुछ का लगाव अपनेको न कुछ बना देता है।

(५५)

बाहरकी कुछ भी घटनासे निजमें कुछ भी उपद्रव नहीं होता, अज्ञानी खुदमें कल्पनाओंके पुष्प-गुच्छ बनाकर कष्ट-फलको जन्म देता, बाह्य पदार्थसे कुछ सम्बन्ध ही नहीं, फिर वहाँ शरण क्या, शरण तो मात्रस्वयं है।

(५६)

बाहरी बातकी उपेक्षा करो, आत्माके हिताहितको बात को महत्त्व दो, निरपेक्ष सहजसिद्ध स्वरूपकी उपासनाके प्रसाद से अन्त: प्रसन्न रहो, प्रतिकूल चेष्टा करने वालेको दयापात्र समझकर उनको सबुद्धिका आशीर्वाद दो।

(५७)

मैं ज्ञानमात्र हूँ, क्यों न मैं अपने ज्ञानस्वरूपमें ही मग्न हो जाऊँ, ज्ञानमग्नतासे समस्त मानसिक संकट व शारीरिक क्लेश समाप्त हो जाते हैं, ज्ञानमग्नता ही मेरी रक्षण और पोषण करने वाली सच्ची माता है।

(५८)

अहो, कैसी नादानी, मतलब तो कुछ नहीं, व्यर्थ बाहर उपयोग जोड़कर दु:खी होते, अपनेमें अपने उपयोगको समा-कर समरस होकर क्लेशप्रक्षय करनेकी सच्ची शूरता करो, प्रभुको निरख, खुदको परख, अन्तर कहाँ, खुदमें समा और कृतार्थ हो जा।

(५९)

सबके हितका चिन्तन करना, ज्ञानब्रह्मकी आराधना करना मनका शृंगार है, हित मित प्रिय वचन बोलना, प्रभु एवं आत्मब्रह्मका स्तवन करना वाणीका शृङ्गार है, निर्बल दु:खी रोगीकी सेवा करना, गुणविकासक तपश्चरण करना तन का शृङ्गार है।

(६०)

मुझमें कष्टकी तो गुंजाइश नहीं और कष्टका बिछाव है, इसमें अपराध किसका ? मुझमें दोषकी तो गुंजाइश नहीं और दोषका बिछाव है, इसमें करतब किसका ? मुझमें विकल्पका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

तो स्वभाव नहीं और विकल्पका वितान है इसमें आग्रह किसका ?

(६१)

मनको नियंत्रित करो, इन्द्रियोंका व्यापार बंद करो, सर्व विकल्प हटा दो, अन्तरमें सहज विश्राम लेकर ज्ञानमें सहज ज्ञानप्रकाशमय हो जाओ, प्रियतम सहजानंदधाम! निज सहज चित्स्वभावमें लीन होकर परम तृप्त होओ ।

(६२)

क्रोधके समय कर्तव्यके सुनिर्णय करनेकी सुबुद्धि रहती ही नहीं, क्रोधके समयके निर्णयका पालन नियमसे पश्चाताप-कारक होगा, अतः क्रोधके समय तन, मन, वचनको विश्राम दो, कोई प्रोग्राम मत बनाओ ।

(६३)

धर्मार्थ भी कुछ दान करानेकी बात कहनेमें कुछ दीनता तो होती ही है, वास्तविक निःसंग हुए बिना दानकी बात न कहनेमें हीनता होती है, अतः निःसंग होनेका पौरुष करके दीनता व हीनता दोनोंसे मुक्त होओ ।

(६४)

धन, मान, यश भोगादि विषयक तृष्णाकी सीमा होती नहीं, तृष्णामें विश्राम आराम आनन्दकी झलककी संभावना होती नहीं, अतः हीन संसारी प्राणियोंसे संतोषकी शिक्षा लो और आराम करो ।

http://www.jainkosh.org

(६५)

अपने आत्महितकी भावना हो तो वर्तमान व भविष्य समृद्ध हो, आत्महितकी भावनासे चूके तो न यहाँ कुछ मिलेगा, न आगे। सबसे निराले सहज ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्वके आश्रयमें हित है ।

(६६)

ज्ञेयज्ञायकसांकर्यका दुष्परिणाम भाव्य बनकर भोक्ता होना है। तब भाव्य न बनकर वेदक बनते हुए ही भोक्ता बन लो। पश्चात् वेदकता दूर कर मात्र ज्ञायक रह लो, यही सत्यशूरता है ।

(६७)

उपयोगमें कोई भी बाहरी पदार्थ मत आओ। उपयोगमें निज सहज आनन्दस्वभावी ज्ञानमय अन्तस्तत्त्व ही रहो। ऐसे पुरुषार्थपूर्वक क्षण बीतें, इसमें ही मनुष्यभवकी सफलता है ।

(६८)

जीवके जन्मव्याधिका रोग सहजात है, अनादिका पुराना है। यह रोग असाध्य तो नहीं, किन्तु महौषधि द्वारा साध्य है। वह जन्मव्याधिविनाशिनी महौषधि चित्स्वभावकी दृढ़ आराधना है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(६९)

निज सहज ज्ञानस्वरूपका मात्र जाननरूप परिणमनमें संकट नहीं। कर्मविपाकके प्रतिफलनसे संपर्क जुड़नेपर ज्ञान-का विकल्पपरिणमन ही संकट है। कर्मविपाक और ज्ञान-वृत्ति इनमें भेदविज्ञान करना अमृतपान है।

(७०)

मुझे तो सिद्ध ही होना है, ऐसे निर्णयसे संतोषमार्गपर विहार होने लगता है। परपदार्थ व परभावकी उपेक्षा होने पर संतोष सुतरां ही हो जाता है। साथ कुछ रहता नहीं, संतोषबलसे शांत हो लो तो बुद्धिमानी है।

(७१)

कोई भी जीव वस्तुतः परपदार्थसे लगाव कर ही नहीं सकता है। उपयोगमें प्रतिफलित कर्मविपाकसे ही लगाव बनाया जाता है। यह तो निजके घरकी बात है, अपने स्वरूप को सम्हाल लो, सब सम्हल गया।

(७२)

ज्ञानमें खेद असम्भव है, बाह्यसे खेद आता नहीं। खेद तो उपयोगमें प्रतिफलित कषायके आग्रहसे ही है। कषायका आग्रह न कर, स्वरूपका आग्रह करो, खेद सब समाप्त।

(७३)

संकट तो है, मगर बहुत बड़ी उलझन हो तो हिम्मत

हारो। उलझन तो अन्दरमें बहुत नहीं, सिर्फ अभिमुखताके जरासे फेरकी है। प्रतिफलित कर्मविपाकके अभिमुख न होकर स्वभावके अभिमुख होओ, उलझन सब खत्म।

(७४)

राग तो दबी आग है जिससे अंदर-अंदर तो जलते रहते, बाहर मौज मानते। अन्दरकी जलन व बाहरकी मौजके कारण रागसे दोनों ओरसे प्रगतिमें रुकावट रहती है। 'राग त्यागि पहुँचूं निज धाम। आकुलताका फिर क्या काम।"

(७५)

न इकतरफा क्रोध करो, न दुतरफा क्रोध करो, क्रोध करो ही नहीं। क्रोधसे बुद्धि बिगड़ती है, बिगड़ी बुद्धिमें विपदा आती है। अपने अविकार शान्तस्वरूपको ही अपना सर्वस्व समझकर इसी अन्तस्तत्त्वकी भक्ति करो।

(७६)

इष्टके अलाभमें होने वाले विषादसे इष्टलाभमें होने वाला मौज अधिक भयंकर है। विषादमें तो आत्मप्रभुकी सुध रह सकती, मौजमें प्रभुकी सुध नहीं रहती। जहाँ आत्मप्रभुकी सुध नहीं, वहाँ भव-भवमें रुलाने वाला कर्मबन्ध होता है।

(७७)

समस्त बाह्य पदार्थोंसे उपयोगका एकदम कटाव कर दो। उपयोग में ज्ञानमात्र अंतः सहजस्वरूप ही प्रतिभासने दो।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

भव-भवमें क्लेश सहते रहना अच्छा नहीं, ज्ञानमग्न होकर भवरहित हो जाओ ।

(७८)

द्वेष वाला व्यवहार विपत्ति करता है, राग वाला व्यवहार विडम्बना करता है । विपत्ति और विडम्बना दोनों ही संक्लेशहेतु होनेसे अहित हैं। अन्तस्तत्त्वको निरखो, रागद्वेषसे हटो, ज्ञानमग्न होओ, यह समाधि ही सत्य सम्पदा है ।

॥ समाप्त ॥

http://www.jainkosh.org

परमात्म-आरती

ॐ जय जय अविकारी ।

जय जय अविकारी, ॐ जय जय अविकारी।
हितकारी भयहारी, शाश्वत स्वविहारी ॥टेक॥ ॐ
काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी ।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी ॥१॥ ॐ
हे स्वभावमय जिन तुमि चीना, भव सन्तति टारी ।
तुव भूलत भव भटकत, सहत विपति भारी ॥२॥ ॐ
परसम्बंध बंध दुख कारण, करत अहित भारी ।
परमब्रह्मका दर्शन, चहुँ गति दुखहारी ॥३॥ ॐ
ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनिमन संचारी ।
निर्विकल्प शिवनायक, शुचिगुण भण्डारी ॥४॥ ॐ
बसो बसो हे सहज ज्ञानघन, सहज शांतिचारी ।
टलें टलें सब पातक, परबल बलधारी ॥५॥ ॐ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्म-कीर्तन

हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम। ज्ञाता दृष्टा आतम राम ॥टेक॥
मैं वह हूँ, जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ रागवितान ॥१॥
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञाननिधान।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥२॥
सुख दुख दाता कोइ न आन, मोह राग रुष दुखकी खान।
निजको निज परको परजान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ।३।
जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिनके नाम।
राग त्यागि पहुँचूं निज धाम, आकुलताको फिर क्या काम ।४।
होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, सहजानन्द रहूँ अभिराम ॥५॥

मुद्रक:—नवयुगान्तर प्रेस, मेरठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com